ये बेवफाइयाँ

हुश्न तवस्सुम निहाँ

ये बेवफाइयाँ

मेरे दोनों शौहर आपस में भिड़े पड़े थे और मैं तकिए के गिलाफ में बूटें काढ़ती हुई मजे ले रही थी। दोनों का झगड़ा कई-कई जावियों पर चल रहा था। मुँह जबानी भी, हाथापाई भी और अदालती भी। खूब गले फाड़े जाते, पेशियाँ ढोई जातीं, मुकदमे लादे जाते। मगर क्या था, थक-हार कर जज भी हथियार डाल देता। मन-माफिक कोई फैसला ना कर पाने पर वे भी हाथ झाड़ लेते और फैसले के सारे अख्तियारात मुझे

थमा देते। बीच-बीच में मुल्ला-काजी भी हाथ-पाँव चला लेते और मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड की तरफ मुआमला खींच ले जाते। मगर मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड भी ऐसा मकड़जाल साबित होता जहाँ पहले ही कितने ही मसाइल तड़फड़ा कर दम तोड़ रहे होते। वो मु.प. लॉ बोर्ड जिसे अपनी ही मिजाजपुर्सी करने की तमीज नहीं। काजी व उलेमात बगलें झाँकने लगते। उनका इल्म ओ काबिलियत जवाब दे जाते। मैं ठहरी हुई पहाड़ी बन गई जिस पर से सारे मौसम आते और फिसलते चले जाते। मैंने भी मौसमों की मस्ती और मौसमों के संग बहना सीख लिया था। बजाय इसके कि अपने ऊपर छाती खिजाओं की बदलियों पर रोऊँ-पीटूँ। अब देख रही हूँ सारा दयार आबै-कशीफे दहर में बहता जा रहा है।

सारे बेवफा बादल हवाओं में टूट कर बिखर गए हैं। हमारी रिहाइश शहर से दूर किनारे से लगी हुई है जिसकी सरहदों पे नन्हें-नन्हें गाँव कायम है। खेतों की हरियाली से सारी फिजाँ आरास्ता है। जिसके अपने ही मजे हैं। आस-पास के खेतों से फूटती देहाती नगमों की सदाएँ जी में प्यार घोलती हैं और मैं दुनियाबी समंदर के छोर बैठी ला' लो गुहर चुन रही हूँ। मुझे समंदर की आवारा लहरों ओर तूफानी अठखेलियों से कोई सरोकार नहीं... मैं तो बस मैं हूँ। तनवीर अहमद से मेरी शादी चालीस साल पहले हुई थी। तलाक चालीस साल बाद। इस दरम्यान मैं छह बच्चों की माँ बनी, चार बच्चों की नानी और पाँच बच्चों की दादी। हमारी शादी उन्नीस सौ अढ़सठ में हुई। तब तनवीर एक छोटा सा रेस्टोरेंट चलाता था। ये शायद मेरे कदमों की बरकत थी कि मेरे दाखिल होते ही घर में दौलत बरसने लगी। हमारा रेस्टोंरेंट एक बड़े और मकबूल होटल में तब्दील हो गया। यहाँ तक कि बाहरी मुसाफिरों के लिए फकत वही एक होटल मशहूर था। हमारे होटल की चकाचौंध दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई। बच्चों को ऊँची पढ़ाई पढ़वाई। अच्छे-अच्छे घरों में उनके रिश्ते किए। मेरे खुश-कदमों का एहसास तनवीर को भी बारहा रहा। इसीलिए वह अक्सर मुझे 'बरकती' कह कर पुकारता था। फिर जिस तरह तनवीर जान तोड़ मशक्कत करता था, मैं भी वैसे ही तिनका-तिनका सँजो कर उसकी आमदनी रखती थी। कभी किसी तरह की फिजूलखर्ची की आदत नहीं डाली न ही बच्चों को डालने दी।

मेरी खूबियों पर निसार तनवीर अपनी आमदनी का एक हिस्सा हर महीने मेरे खाते में डालवा देता। ये उसका शुरू का ही मामूल था। यही रकम होते करते दो करोड़ रुपए में तब्दील हो गई थी। हालाँकि मैने हमेशा मना किया कि एक घर में तेरा-मेरा क्या, जो तुम्हारा वही सब हमारा। मगर तनवीर कहता -

'तुम नहीं जानतीं, दुनिया बड़ी मतलबपरस्त है। मेरे ना रहने पर मेरा सब कुछ ये बच्चे बाँट लेंगे। तुम्हारा कोई ना होगा। लेकिन तुम्हारे पास कुछ लस होगी तो सब तुमसे चिपके रहेंगे। बाकी हमारा-तुम्हारा बँटा क्या है?' मेरा सिर अदब से उसके सामने झुक गया था। उसके अंदर मेरे लिए हमेशा एक मुशफिकाना-शमा जलती रही। छुट-पुट उल्टी हवाओं को छोड़ दिया जाए तो हमारी जिंदगी हमेशा लुत्फंदोज बीती। हमारे घर सातों पहर सहाफी, वुकला और सियासतदाँ की आमद-रफ्त रहती। हमारा दो सितारोंवाला होटल पूरा चाँद बन कर शहर में दमक रहा था। बेटियाँ ब्याह दी गई थीं। बेटे यहाँ-वहाँ सेटल हो चुके थे। एक मुंबई में था, दूसरा कोलकाता, में तीसरा अबूधाबी में और चौथा यहीं लखनऊ में रह कर पढ़ रहा था। सारी जिम्मेदारियों से हम फारिग हो चुके थे। अब तो तसव्वुफ की तरफ जी भागने लगा था कि एक रात यक-ब-यक कमाल हो गया।

इसके कबल ये बता दूँ कि तनवीर अहमद और अहमद अब्बास गहरे दोस्त थे। एक-दूसरे पर जाँ-निसार करनेवाले। बगैर एक-दूसरे से दो-चार बातें किए उनका दिन नहीं पूरा होता। दिन में कम-अज-कम एक बार उनका रू-ब-रू होना जरूरी था। इसके लिए पहल हमेशा अहमद अब्बास करता। दिन में जिस भी वक्त वह फुर्सत में होता, आ धमकता। फिर शहर भर का ही नहीं पूरे हिंदोस्तान का जायजा लिया जाता। बावर्चीखाने से चाय की प्यालियाँ और पकौड़े जाते रहते, चाय के साथ-साथ बहसें भी गर्म होती रहतीं। कभी-कभी मैं झुँझलाती तो तनवीर आँखें दबाते हुए बोलता।

'उलझती क्यूँ हो, बेचारा इतनी दूर से तुम्हारे हाथ की बनी चाय पीने आता हैं...'

अब्बास मुझसे भी खासा घुला-मिला था। कभी-कभार हल्के-फुल्के मजाक भी कर लिया करता था, चुटीली बातें छेड़ता रहता। लेकिन एक वक्त ऐसा भी आया कि इस दोस्ती की खुशबू काफूर बन कर उड़ गई।

बहरहाल -

फिर से आती हूँ उसी मौजू पर कि जो रात करिश्मा बन गई। मैं गौर कर रही थी कि कुछ एक अर्से से तनवीर मुझे एवाइड करने लगा था। छुट-पुट घर में दिख जाता बाकी अल्लाह जाने कहाँ गायब रहता। दिन को तो गायब रहता ही रात को भी जाने किस पहर आ कर सो रहता। मैं तराह दे जाती। कहाँ कि तमाम मसरूफियात में उलझते हुए भी वह मेरे लिए वक्त चुरा लाता था कहाँ कि अब फुर्सत में भी वह मसरूफ होने का पाट भरे रहता। अहमद अब्बास से भी वह कटाया करता। और हम दोनों एक-दूसरे से ही तनवीर की शिकायत करके जी हल्का कर लेते। फिर आई वो करिश्माई रात।

हुआ ये कि रात के बारह-एक बजे होंगे। मैं करवटें बदल रही थी। तनवीर हस्बे-मामूल गायब था। मोबाइल हमेशा की तरह वह घर पे ही छोड़ गया था। बहरहाल, कोई भी राज देर तक पोशीदा नहीं रह सकता। मुझ पर भी उस रात तनवीर की बेजारी का इन्किशाफ हो गया। रात की सुन्न-घड़ियों में यकायक बाहर का गेट खड़का। मैं नीम-खुमारी में थी, मगर इस चर्र...र...मर्र...की आवाज पर चौकन्ना हो कर बैठ गई। कुछ पल साँस रोके बैठी रही। तभी एक से ज्यादह कदमों की आहटें सुनीं। लॉन, फिर दालान लाँघते हुए वे कदम जब हमारे बेडरूम के सामने से गुजरने लगे तो हमारा जब्र-ओ-सब्र जवाब दे गया। बिजली की तेजी से उचक कर खिड़की की तरफ भागी। पता ही नहीं चला कब हाथों ने खिड़की के पर्दे सरका दिए। मैं तो सामने का मंजर देख के साकित थी, लगा लहरा के गिर पड़ूँगी। तनवीर एक नकाबपोश के साथ सीढ़ियों की तरफ बढ़ रहा था। पल भर में ही माजरा समझ गई। एक झटके से दरवाजा खोला और शेरनी की तरह चीख पड़ी -

'रुक जाओ...'

रात के सन्नाटे में चीख दहाड़ बन कर कौंधी। तनवीर एकदम से हड़बड़ा गया, फिर बल खाते हुए पलटा। साथ ही वो बुर्कापोश भी। बुर्के की पट्टियाँ गिरी हुई थीं जिससे सिर्फ महसूस हुआ कि कोई जवान खूबसूरत शय है। मैं तनवीर के बजाय लड़की से मुखातिब हुई।

'बीबी तुम्हारी जैसी इस आदमी की बेटियाँ और बहुएँ हैं। आँखों के साथ-साथ क्या तेरी अक्ल पे भी पर्दा पड़ गया है? ये तुझे कहाँ से ले कर आया है बेटी...?'

'बेटी' कहना था कि तनवीर की आँखें खौलने लगीं। दौड़ के मेरे गले को हाथों से कस लिया और कसता गया।

'तू मुझे जलील करेगी..., मुझ पर हुक्म चलाएगी हरामजादी... हमारे ऊपर चार शादियाँ सुन्नत हैं... मैं मर्द हूँ... मर्द...'

मेरे गले से घुटी-घुटी चीख निकल रही थी। चीख सुन कर मेरा छोटा बेटा रेहान दौड़ कर बाहर आ गया, सारे नौकरों ने आ-आ कर घेर लिया। बेटे ने मेरा गला छुड़ाया फिर उस औरत की तरफ देखा और चीखा...

'अब्बू...'

लगा उसका दिल फट जाएगा। तूफान उसके भीतर करवटें ले कर उठ बैठा।

मैं जुनूनी हालत में उस लड़की पर झपटी। वह डर से सिकुड़ गई और तनवीर की पीठ के पीछे ओट लेती हुई तनवीर से बोली

'हाय अल्लाह..., आपने तो कहा था आपकी अहिल्या इंतकाल फर्मा गईं...'

'या अल्लाह..., धोकेबाज... दो-तरफा धोका...'

कहती हुई पगलाई आँधी की तरह तनवीर के चेहरे पर कई थप्पड़ मैंने रसीद कर दिए। वह सकते में आ गया। बेटे, नौकर-चाकर और बड़ी बात उसकी महबूबा के सामने, एक औरत उस पहाड़ जैसे जिस्म पर थप्पड़ जड़ दे वो... सितारोंवाले होटल का मालिक... वो मकबूल और मअरूफ शख्सियत... जो शहर भर का सेठ है... जिल्लत और हया के मारे कट कर रह गया। आव देखा ना ताव, दहाड़ पड़ा

'जीनत... तुम्हें तलाक दिया... तलाक दिया... तलाक दिया...

एक लम्हे को पूरे हॉल में मौत-सी खामोशी छा गई मगर होश लौटते ही मैं तड़ से गिरी।

दूसरे दिन मैं रोती-पीटती मायके पहुँचा दी गई। शहर भर में एक ही चर्चा गर्म थी, तनवीर सेठ ने अपनी बीबी को तलाक दे दिया, वो भी इस उम्र में। हफ्तों धूम रही। भाईजान ने सुना तो आगबबूला हो गए। मगर क्या बिगाड़ लेते उसका, आखिर वह मर्द था... मुसलमान मर्द... उसने अपनी कर ली। वह कर सकता था। वह करने के लिए बना ही था। छोटे बेटे ने धड़ाधड़ सारे भाई-बहनों को फोन से खबर कर दी। और सभी ने बारी-बारी फोन करके मुझे मेरी दिलजोई की। बेटों ने अपने-अपने पास रहने की इल्तिजा की मगर मैंने साथ कहा -

'अल्लाह रखे, अभी हमारा मायका बरकरार है, अल्लाह मेरे भाई की उम्र दराज करे...'

अहमद अब्बास ने सुना तो सन्न रह गया, फिर जा कर तनवीर की खूब खबर ली और फिर मेरे पास आ कर घंटों सिर झुकाए बैठा रहा। ना उसके पास कोई लफ्ज थे, ना मेरे पास। मैं उसके नजदीक ही बैठी खलअ में तैरती रही। इसके बाद भी वह कई मर्तबा आया। लेकिन उस बार तो आ कर उसने चौंका ही दिया।

इधर-उधर की कहते-सुनते उसने कहा।

'भाभी, तनवीर का एक पैगाम है आपके लिए...'

मैं चौकी पर पानदान खोले बैठी थी। हाथ में पान का बड़ा सा पत्ता था जिस पर मैं चूना-कत्था लेप रही थी। उसकी बात सुन कर मेरे हाथ रुक गए।

'क्या कहा...?'

'असल में वह अपने किए पर बहुत शार्मिंदा है। ...वह ...वह आपसे फिर से निकाह...।

मैं बीच में ही फट पड़ी।

'खामोश अहमद अब्बास... खबरदार जो आइंदा कभी ये बात जुबान पर लाए... निकाह भी उससे... जिसे निकाह का मतलब तक नहीं पता। ...मैं तो उसकी जिंदगी को अपनी जिंदगी समझ कर तरतीब देती रही। उसके घर को तिनका-तिनका सजाती रही और उसने तीन लफ्जों में सब रफा-दफा कर दिया। चालीस साल तक भुगती मैं उसके साथ चासील साल तक कड़ी मशक्कत करके मैंने जो मंजिल खड़ी की आपने महज तीन लफ्जों में ढहा दी... वह... भई... वह... अच्छी रही आपकी मर्दानगी।

'क्या कहा जाए भाभी उसकी बदकिस्मती...'

'कुछ भी हो... मैं उसकी जागीर नहीं हूँ अहमद अब्बास... मर्दों का तो यही रवैया है... रहा है बल्कि। सारे खुदगर्ज मतलबपरस्त... मुफलिसी होती है तब जोरुओं के जेवर... गहने तक काम में ले लिए जाते हैं और जब रोटी-पर-रोटी रख कर खाने लगते हैं तब उन्हें ऐय्याशियाँ सूझती हैं, जवाल के वक्त जिस बीवी ने उनके साथ अपनी हड्डी-पसली एक कर दी, खुद को रायगा किया वह उनके लिए गैर-इस्तमाली हो गई अब जब वे आदमी बन गए तो कमसिन लड़कियाँ तलाशने लगे।'

'मैंने फिर पान पूरा करके गिलोरी उसे पकड़ा दी फिर दूसरा पान अपने लिए बनाने लगी, पान लगाते-लगाते फिर थोड़ी थमी -

'भई, वह तो बाहर की दुनिया में मस्त था, उसे क्या पता कब किस बच्चे ने कौन सी क्लास पास की, कब बच्चों की फीस जमा हुई। कौन सा बच्चा किस स्कूल में पढ़ा, कौन पास हुआ, कौन फेल... उसे तो यह भी नहीं याद होगा कि किस बच्चे को कब बुखार हुआ, कब निमूनिया हुई... मगर मुझे याद है दिन-तारीख समेत। क्योंकि मैने एक इबादत की तरह उसके कुनबे को सहेजा, समेटा। मगर इबादत भी लाहासिल गई...' कहते-कहते मैं रुआँसी हो गई। वह भी जैसे थोड़ा भीगा ठहरते हुए बोला -

'भाभी, उसे तो अपने किए की सजा मिलेगी ही, उसकी बीवी का 'हलाला निकाह' हो इससे बड़ी बदनसीबी और इससे बड़ी सजा किसी मर्द के लिए क्या हो सकती है...?'

मैं तिलमिला गई।

'मर्द... वो... मर्द... तुम उसे मर्द कहते हो... थूकती हूँ, ऐसे मर्दों पर और ऐसी मर्दानगी पर। अरे मर्द हो तो दुनिया में अपने नाम का परचम लहरा के दिखाओ, पराई बहू बेटियों की हिफाजत करो...। बेवाओं के सिर ढको, यतीमों के सिर पर हाथ रखो... कुँवारियों के घर बसवाओ। नेफा पे जा कर मुल्क के लिए लड़ मरो... ये होती है मर्दानगी। यूँ रखैलें रखने को, ऐय्याशियाँ करने को मर्दानगी थोड़े ही कहेंगे... फिर ये मर्दानगी, कि एक मजबूर लड़की को दौलत का लालच दे कर, धोके में रख कर उससे ब्याह का ढोंग रचाओ... अपनी ब्याहता को धक्के मार कर निकाल दो... यहाँ तक तो फिर ठीक... आगे उसकी ये भी ख्वाहिश कि उसकी बीवी किसी दूसरे मर्द के साथ हमबिस्तर हो... उसे ये कहने में शर्म नहीं आई... उससे कहना ऐसा सोचने से पहले वह चुल्लू भर पानी में डूब क्यूँ नहीं गया...?

मैं हाँफने लगी। अहमद अब्बास ने मुझे खामोश करने के लिए हाथ उठा कर कुछ कहना चाहा मगर मेरे सीने में उबाल उठ रहा था, मैं थमी नहीं -

और तुम क्या कहते हो, कि ये उसके लिए सजा है... चलो मानती हूँ कि वह कुसूरवार है इसलिए सजा का हकदार है उसे सजा मिल रही है... मगर मैं... मेरा क्या कुसूर है कि दूसरे मर्द के पास निकाह करके रहूँ... और फिर उससे तलाक ले कर फिर निकाह... ये तलाक और निकाह का खेल मैं क्यूँ खेलू...? सिर्फ औरत हूँ इसलिए... क्या औरत इंसान नहीं होती...?

जब अहमद अब्बास ने मेरे तेवर देखे तो वह टका सा जवाब तनवीर को दे कर चला आया।

बात आई-गई हो गई। तलाक का मुझ पर कुछ खास असर नहीं था। सारे फराएज से फारिग हो चुकी थी, रेहान आ कर मिल ही जाता था, बकिया भतीजे-भतीजियों के दरम्यान मुतमईन थी उन सबके ढेर सारे नन्हें-मुन्हें दिन-रात घेरे रहते। भावज और बहुएँ तन्हा छोड़ती ही नहीं। ससुराल की मसरूफियात के चलते काफी दिनों से मायके की तमाम रिश्तेदारियाँ छूट चुकी थीं। मैं फिर से उन्हें हवा, पानी देने निकल पड़ी। हर दिन किसी ना किसी चचेरे-ममेरे-फुफेरे भाई-बहनों के यहाँ से दावत के बुलावे आते

रहते। इस तरह किसी ना किसी बहाने मैं अपना गम गलत करने निकल जाती और मेरा वक्त गुजरता रहता।

मगर जैसे वक्त ने पलटा खाया। ऊँट पहाड़ के नीचे आया। इद्दत के दिन पूरे होते-होते तनवीर आ धमका। सैकड़ों तोहफों के पैकेटों के साथ। भाईजान से फिर खूब रोया-धोया। मुझसे मिलने की इजाजत माँगने लगा। थोड़ी ना-नुकुर के बाद भाईजान ने मुझे ड्राइंगरूम में बुलवाया। मैं सिर पे लंबा सा घूँघट डाल कर कमरे में दाखिल हुई। भाईजान बाहर निकल गए। मुझे देखते ही तनवीर ने मेरे कदमों में टोपी रख दी। और रिरियाने लगा।

'जीनत... अपने घर चलो... मुझे माफ कर दो... वो मेरी सबसे बड़ी भूल थी... तुम तो घर की जीनत हो... रौनक हो, तुम्हारे बगैर घर बीरान हो गया... बाजारू औरतों से घर बसता है क्या...?'

मैं और जब्त ना कर सकी फट पड़ी -

'तनवीर अहमद... जबान सँभाल के... औरत घरेलू या बाजारू नहीं होती, औरत सिर्फ औरत होती है। औरत की कोई जात नहीं होती। औरत एक शम्मअ है जो उम्र भर अँधेरे में रह के दूसरों को रोशनी देने के लिए जलती रहती है, खुद को जला कर तुम्हें रोशन करती है... औरत एक नदी है जो सिर्फ बहना जानती है। लेकिन उल्टी हवाओं में वो तुम जैसों को बहा देना भी जानती है। ...तुम जैसे कूड़ा-कचरों को समेट कर बैठी नहीं रहती। अगर ऐसा भूल से कर भी बैठी तो वह नदी नहीं, नाला कहलाती है। ये तो तुम मर्दों की कमअक्ली और कमजर्फी है कि कभी उसे मुकद्दस मान कर आँखों से लगाते हो और कभी उसमें अपनी गंदगियाँ घोल कर उन्हें नाले में तब्दील कर देते हो। औरत को घर भी तुम्हीं लोग देते हो, बाजार भी तुम्हीं लोग देते हो, मुझे तुमसे नहीं, उस बेचारी मजबूर और माजूर लड़की से हमदर्दी है जिसकी मुफलिसी का फायदा उठा कर तुम उठा लाए उसे। वह हसीन है, जवान है, वह अपने महकते ख्वाबों को रौंदते हुए, तुम जैसे बुड्ढे खूसट के साथ यूँ ही नहीं चली आई। उसकी मजबूरी या कमजोरी तुम्हारी दौलत है, तुम्हारी मुहब्बत नहीं, लेकिन सिर्फ इस बिना पर तुम उसे बाजारू कह कर अपने गुनाहों से फरार नहीं पा सकते।

वह उठ कर सोफे पर बैठ गया। सामने की चेयर पर मैं भी बैठ गई।

'वह लालची और मतलबपरस्त औरत थी जीनत...'

उसकी आँखों में मक्करीवाले आँसू झिलमिलाने लगे। मगर मैं उसकी रग-रग से वाकिफ थी। अपना मतलब हल करने के लिए वह सैकड़ों मक्कारियाँ रच सकता था। उसके चेहरे की हवाइयों को नजरंदाज करती हुई फिर शुरू हो गई

'तुम शायद नहीं जानते तनवीर अहमद, औरत हर भेस में परफैक्ट होती है। माँ के भेस में हो, चाहे बहन, बेटी और बीवी के भेस में हो या कोई बाजारू औरत ही क्यूँ ना हो'

इसका अंदाजा मुझे हो चुका है...' तनवीर मरियल सी आवाज में पहलू बदलते हुए बोला।

'अभी कहाँ, जरूरी सबक तो अभी तुमने पढ़े ही नहीं...'

कहती हुई मैं झप्प से उठी और बाहर निकल आई। वह एक-दो आवाजें दे कर चुप रहा।

मेरा बेटा रेहान मुझसे मिलने आता। एक रोज उसने तनवीर की मक्कारियों के सारे ताले मुझ पर खोल दिए। उसने बताया, उसका बाप मेरे दो करोड़ के लिए कलप रहा है। हालाँकि मैं पहले राजी नहीं थी मगर रेहान की बातें सुन कर सचमुच आँखें खुल गई। मैंने उसे सबक सिखाने की ठान ली। मैंने रात दस बजे के करीब अहमद अब्बास को फोन लगाया और निकाह की रजामंदी दे दी। अहमद अब्बास चौंक गया। भाईजान को बजाहिर नहीं मगर भीतर-भीतर नागवार गुजरा। मगर तनवीर ने सुना तो झूम उठा। दिन में दस बार फोन करके मुझे शुक्रिया कहा। उस वक्त तक शायद उसे गुमाँ ना था कि मेरे उसके बीच जो लंबा सा रास्ता है उसके बीच एक निहायत गहरी सी खाई भी है 'हलाला निकाह'।

तनवीर ने इस मुआमले में उलेमात से मशवरा किया। बातें तय कर ली गईं। दिन-तारीख भी तय कर लिए गए फिर इस रस्म के लिए किसी मातबर और भरोसे-मंद आदमी की शिनाख्त में तनवीर लग गया। उसने अपने मिलनेवालों पर कई बार नजर फेरी और हर बार नजर अहमद अब्बास पर आकर टिक गई। अहमद अब्बास की बीवी को गुजरे अर्सा हो गए थे। शहर के शरीफ घराने से तअल्लुक रखता था। एक बेटी, एक बेटा का बाप...। बेटी ससुराल में थी, बेटा पढ़ रहा था। अहमद अब्बास तनवीर से उम्र में भी कम ही था। थोड़ी ना नुकुर के बाद अहमद अब्बास को राजी कर लिया गया। रेहान हालाँकि इससे इत्तेफाक नहीं रखता था। उसे कॉलेज में दोस्तों की हँसाई का सामना करना था। पहले भी काफी जलील हो चुका था। मगर हम दोनों पे अजब जुनून तारी था। मुझे अपनी जलालत का इंतकाम लेना था और तनवीर

को मेरे हिस्से के दो करोड़ जिसका ख्याल किए बगैर उसकी जबान से 'तलाक' फिसल गया था और अब हाथ मल रहा था। इसे हासिल करने के लिए उसने मुझसे एक सौ एक बार झूठ बोला और मैंने उसे एक सौ एक बार ही झूठा कह डाला! मन ही मन। उसकी कमजोर रग जिस दिन मेरी पकड़ में आई मैंने उसे पटखनी देने की ठान ली। उसने मुझे मेरी हैसियत से खारिज करना चाहा था, एक औरत सब कुछ सह सकती है मगर अपनी नकार नहीं सह सकती। मैं भी नहीं सकूँगी। शहर में एक बार फिर चर्चा गर्म थी। बेटे रेहान की कैफियत अलबत्ता काबिल-ए-दीद थी। लोग चुटकियाँ लेते, कंमेंट पास करते। ये 'हलाला निकाह' शहर में ईश्यू बन कर छा गया। यहाँ तक कि बेटा एक रोज आ कर रो पड़ा। मगर मैं ममता के हाथों हार माननेवाली नहीं थी। खुदा ने औरत को माँ का दिल दिया है और इसी दिल ने हमें तिल-तिल मरने पर मजबूर किया है। लेकिन मैं दिल के हाथों हारना नहीं चाहती थी। मैंने तो तनवीर को मात देने की ठान ली थी। बेटे को समझा दिया -

'बेटे, हम दोनों का झगड़ा तू हमपे छोड़ और अबूधाबी निकल जा यहाँ रहेगा तो पागल हो जाएगा।'

बेटे को बात जँच गई। वह तुरत-फुरत तैयारी करके फुर्र हो गया। अब मैदान साफ था। अब शह को मात देने के सुनहरे मौके थे। और मैं ताल ठोंके तैयार...।

तय शुदा वक्त पर हमारा और अहमद अब्बास का निकाह हो गया। कुछ चंद लोगों के साथ तनवीर ने भी निकाह में शिरकत की। निकाह हो गया। लोगों के लिए एक नया ईश्यू बन कर तैयार। उधर तनवीर को ताब कहाँ? दूसरे! दिन तड़के ही उसने अब्बास को फोन किया

'मियाँ कब दे रहे हो तलाक...? मौलाना साहब को ले कर आ जाऊँ?'

तब मैं अहमद अब्बास के बाजू में ही लेटी थी। अब्बास ने जवाब दिया 'ऐसी भी क्या जल्दी है... हो जाएगा, तुमने कौन सा वाहिद-शाहिद बना कर मौलाना को तलाक की रस्म अदायगी की थी। मेरा भी हो जाएगा। इस रिश्ते में कोई दम है यार...'

आखिरी फिकरा शूल बन कर उतर गया मेरे अंदर।

इतने दिनों की गहमा-गहमी में अहमद अब्बास पर ये बात अयाँ हो चुकी थी कि मैं दो करोड़ की मालकिन हूँ। दौलत में बड़ी आँच होती है। इसकी तपिश इंसान की ईमानदारी, शराफत, यारी-दोस्ती सब जला कर रख देती है। अब्बास के मन में भी

मैल आ गया। एक तरह से बगैर उस पर मेरी मंशा खुले ही, वह मेरी मंशा पर उतर आया था। मेरे समेत अब वह दो करोड़ का मालिक था। फिर रंडवा भी था। बगैर हर्रा-फिटकरी के उसकी जिंदगी पे शोख रंग चढ़ गया था। वैसे, लालच उसके मन में हो तो हो मगर मुहब्बत में दिखावा या ड्रामा नहीं था। उसकी जिंदगी का कैनवास कब से सूना पड़ा था, मेरी मेहँदी के निशान पड़े तो महक उठा। उसके जीवन की सूखी पड़ी बगिया हरहरा गई। भरभरा गई। जो कमी एक अर्से से चली आ रही थी मेरे आते ही पूरी हो गई। उसका बेटा हर लम्हा अम्मी-अम्मी करता मेरे पीछे भागता रहता। हालाँकि वह मेरे रेहान का दोस्त ही था और पहले भी मुझे अम्मी ही कहता था। बगैर माँ का होने की वजह से तब भी मैं उसे रेहान की तरह ही प्यार करती थी। मुझे भी लगा था कि मेरा बिछड़ा परिवार मुझे फिर से मिल गया। अब्बास के घर में चाय-नाश्ता बनाते, खाना बनाते, कपड़े धोते, उसके घर को सहजते-सँवारते मैं तकरीबन भूल ही गई कि हमारा कोई मसला है। या ये हमारा हलाला निकाह भर है। हमारा तलाक भी होना है। अब्बास की भी हालत कमोवेश ऐसी ही थी। हर वक्त उसकी बातों में फुलझड़ियाँ छूटती रहतीं। घर हँसा करता। अब वह घर में ज्यादा वक्त बिताने लगा। तनवीर से मिलना भी तर्क कर दिया था। तनवीर फोन भी करता तो वह कन्नी काट जाता। घर आता, तो नौकरों से कहला देता कि वह घर पर नहीं है। मैंने भी तनवीर की बाबत सोचना बंद कर दिया था। एक दिन तनवीर ने फोन करके मुझे खूब गालियाँ दीं, मैंने झिटक कर फोन कट कर दिया।

तनवीर को जब हम दोनों की मंशा कुछ-कुछ समझ में आई तो वह बौखला गया। जिस दो करोड़ के लिए उसने इतनी जद्दोजहद की थी आज वह हाथ से फिसलते नजर आ रहे थे। उसने उलेमात और रिश्तेदारों की मजलिसें बटोरनी शुरू कर दीं। अपनी बातें रखीं। सभी ने एकतरफा फैसला उसके हक में दिया। मगर इससे भी क्या होता। मैं तो तब भी उसके निकाह में ही थी और हम शरई तौर पर मियाँ-बीबी थे। मुआमला अदालत में भी गया, मगर कोर्टों की भी समझ में ये मुसलमानों के पेंच-ओ-खम नहीं आए। आखिर में फैसला मुझ पर ही छोड़ दिया जाता। मैं एक चुप हजार चुप। इसी तरह अब्बास भी अपने फैसले से नहीं डिगा। खिसियाया तनवीर बदहवासी और बेबसी में खंबे नोच-नोच रह जाता।

बल्कि उसने एक रोज मुझसे कहा भी था फोन पर 'जीनत, तू कहीं भी जा, मगर मुझे मेरे दो करोड़ वापस कर दे। वो मेरी कड़ी मशक्कत के थे...'

मैं दहक गई...।

'ऐ... मर्दुए अपनी औकात में रह, वर्ना तलुवे से जुबान खींच लूँगी। ये दो करोड़ तेरी कमाई थी, और मैं क्या तेरे बाप की लौंडी थी जो तेरे बच्चे पालती रही चालीस साल तक तेरे मुर्दे से सुइयाँ निकालती रही? कहे देती हूँ होश में रहा कर...'

उसने चीख कर फोन रख दिया। मैं भी रिसीवर पटक कर घूमी तो सामने अब्बास खड़ा था। पूछा -

'तनवीर था?'

'और नहीं तो क्या... सुअर का बच्चा, मर्द बना फिरता है। ऐ... भाई मर्द ही हो, खुदा तो नहीं। अब मर्द हो तो खोपड़ी पे आग मूतोगे...?' मैं बड़बड़ाती हुई दालान में आ गई और सोफे पर गच्च से धँस गई। पीछे-पीछे अब्बास भी आ कर मेरे बाजू में बैठ गया।

तनवीर को तो खैर शॉक लगा ही था। दोहरा शॉक। जोरू भी हाथ से गई, और जर भी। जोरू तो खैर यहाँ-वहाँ मिल भी जाती, मगर करोड़ की गिनती में जर...? इसीलिए वह चुँधियाया रहता। कभी नौकरों को पीट डालता, कभी घर के सामान तोड़ डालता। घड़ी-घड़ी गुस्से और पछतावे के 'फिट' पड़ते रहते। आज भी वही सब हो रहा था। तनवीर गरजा -

'तूने वादाखिलाफी की है अब्बास, ये निकाह हलाला था। तुझे जीनत को तलाक देना था...'

'जाओ... नहीं देता, क्या कर लोगे?' - किसी जिद्दी बच्चे की तरह अब्बास मुकर गया। तनवीर ने बड़ी बेचारगी से मेरी तरफ देखा। जैसे कोई जाल में फँसा परिंदा आजादी की ख्वाहिश के साथ एक इल्तिजा लिए देख रहा हो। मैंने एक हल्की सी निगाह से उसे देखा और धागा तोड़ कर सुई में पिरोने लगी। मेरी ये निगाह उस थप्पड़ से कहीं ज्यादह तल्ख थी जो मैंने तलाकवाली रात उसके चेहरे पर रसीद किया था। एकदम से छटपटा उठा। जैसे धधकते हुए शोलों से छू गया हो। बेतरह तड़प कर वह चिल्लाने लगा -

'या अल्लाह... इंसाफ रह ही नहीं गया है इस दुनिया में। बीवी धोकेबाज... दोस्त धोकेबाज... किस पे आखिर भरोसा किया जाए... या खुदा... मेरा सब्र इन लोगों पर फट पड़े...'

मैं खामोश, सुई चलाती रही। जैसे उसकी बातें मुझे सुनाई ही ना पड़ रही हों। अलबत्ता, अब्बास उसे घूरता रहा फिर कमरे में जा कर टी.वी. ऑन करके बैठ गया। अपनी मात

देख कर तनवीर ने मुझे भद्दी सी गाली दी जिस पर मैं धीमे से मुस्करा दी। तो वह तिलमिलाया सा बाहर निकल गया फिर बाहरी गेट पर बैठ कर जार-ओ-कतार रोने-चिल्लाने लगा। मेरा जी कराहियत कर उठा।

अहमद अब्बास फिर चकराया सा मेरे पास आ कर बैठ गया। उसका बेटा नोमान भी गुमसुम सा मेरी गोद में सिर रख कर लेट रहा। हम लोग उस दिन घंटों खामोश रहे। तनवीर हार कर जा चुका था। हमने राहत की साँस ली। उसके जाने के बाद मैं चाय बना लाई। और फिर चाय की चुस्कियों में हमने अपने-अपने दर्द भुला दिए। मैं तनवीर को दुनिया की सबसे गंदी गाली देना चाहती थी। मगर क्या है कि वह तो पहले से ही सड़ रहा था।

हमारी शादी को साल भर होने को था। तनवीर पूरी तरह उजड़ चुका था। मैं बचपन से ही बागी लड़की थी। किसी को चाहती, तो टूट कर चाहती। और किसी की जरा भी नजर टेढ़ी हुई तो उसे उसकी औकात तक पहुँचा देती। ये थी मेरी फितरत। दिल से जितनी नर्म, उतनी ही सख्त। किसी को माफ करना मेरी फितरत में नहीं रहा। मैंने कभी किसी के साथ नाजायज नहीं किया और नाजायज सहा भी नहीं। मैं अपनी ये लड़ाई हारने की कभी सोच भी नहीं सकती थी और मेरी चुप मुझे मुतमईन करनी थी, मुझे सँभालती थी।

एक रोज का किस्सा सुनिए। अहमद अब्बास मुँहअँधेरे ही निकल गया। मैंने सोचा, फितरती आदमी है, गया होगा कोई तरफ। करीब दस बजे वापस भी आ गया। मैं मसेहरी पर बैठी सब्जी काट रही थी। वह पहलू में ही मुझसे लग कर बैठ गया। मैं वैसे ही सिर झुकाए अपने काम में मशगूल रही। उसकी साँसों, उसकी आहट, उसकी हरारत से महसूस हुआ, वह कुछ मायूस सा है। जरूर आज किसी ने उसकी अना को चोट पहुँचाई है। ऐसे लम्हों में वह ऐसी ही चुप्पी होड़ लेता था।

मैंने ठहरे पानी में कंकड़ी उछाली

'खैरियत...?'

तो वह सीनी में से तरोई का टुकड़ा उठा के दाँतों से कुतरते हुए बोला - 'जीनत, दस बज चुके हैं, ये काम छोड़ो, चलो पहले बैंक चलते हैं।'

'बैंक..., किसलिए...?' मैं छनकी। लगा, अब्बास अब औकात पे आ रहा है। लेकिन मेरे कुछ कहने से पहले ही बोला -

'ये अपने दो करोड़ तनवीर के नाम ट्रांसफर कर दो...'

'क्या..., तुम्हारी मत मारी गई है...'

'जीनत, मुझे गलत मत समझो... बस, कभी-कभी अपने सुख की बनिस्बत अपनों के सुख ज्यादा अहम हो जाते हैं... मेरे सिर्फ दो बच्चे हैं। इनके सिवा इस दुनिया में मेरा कोई नहीं। तुम जाने कब तक हो मेरी...' वह बड़ी आजिजी से बोला।

'...जीनत, पहले मेरी नियत जो भी रही हो, मगर अब आँखें खुल गई हैं। शायद तुम्हें भी नहीं पता कि नोमान बी.ए. में फेल हो गया है। और अभी भी सही नहीं चल रहा है। ये सब मुझे भी नहीं मालूम था। हम माँ-बाप भी कभी-कभी कितने बेहूदा और मतलब परस्त हो उठते हैं कि अपनी बेवकूफियों के आगे कुछ भी नहीं सोचते हैं। बच्चों के लिए जायज-नाजायज तरीके से जायदाद तो बना लेते हैं, पर बच्चे नहीं बना पाते। मैं जर-जायदाद में किसी से कम हूँ क्या... मगर... आदमी की हवस...'

वह एक ठंडी साँस ले कर रह गया।

'लेकिन अब जाग गया हूँ जीनत...। अगर इतना सब होते हुए भी मेरा बेटा वीरानियों से लिपट कर रोए, सन्नाटों से अपना दर्द शेयर करे तो लानत है मेरे बाप होने पर। तुम्हें नहीं पता, बाहर की दुनिया ने उसे किस-किस तरह मेंटली टार्चर किया है। लोग-बाग उसे ताने मारते हैं कि उसके बाप ने दौलत की लालच में किसी की बीवी पर कब्जा कर रखा है। और ये, कि दौलत की वजह से ही मैं तुम्हें तलाक नहीं दे रहा। कुछ मायनों में ये सही भी था। मगर अब मैं जाग गया हूँ। मैं अब नोमान को और नहीं तोड़ूँगा। कल उसके कॉलिज के प्रिंसिपल साहब भी आए थे। उन्होंने ही सारी सूरत-ए-हाल वाजेअ की। उन्होंने बताया कि अगर ऐसा ही रहा तो नोमान जेहनी-तवाजुन भी खो सकता है और इसकी वजह केवल मैं हूँ... मेरा ये कदम है...'

'नोमान से भी कुछ पूछा...?' मुझे यकायक अब्बास की बातों पर यकीन न हुआ। उसने दोबारा गहरी साँस खींची -

इसकी तह तक जाने के लिए आज हवाखोरी के लिए निकले नोमान से तन्हाई में मिला। वह अजब सी वीरान जगह पर तन्हा लेटा हुआ था। सूनी आँखों से आसमान 'तक' रहा था। मेरे बहुत कुरेदने पर उसकी आँखें भीग गईं। उसने अपना फैसला तुरंत सुना दिया 'अब्बू, अम्मी को मत जाने दीजिए, मगर तनवीर अंकल को दो करोड़ वापस कर दीजिए। मैं इतना ही पैसा कमा कर अम्मी को वापस कर दूँगा...'

मेरा जी उमड़ पड़ा। लगा, गश खा कर गिर जाऊँगी। सामने रेहान का चेहरा, नोमान के चेहरे में गडमड होने लगा। मैंने तरकारी की सीनी उधर खिसकाई और एक झटके से कमरे से बाहर निकलने को हुई कि अब्बास ने हाथ पकड़ लिया 'वैसे जीनत, मैं तुम्हें मजबूर नहीं कर रहा। तुम चाहो तो मैं तुम्हें भी अपने से आजाद कर दूँ। इसके बाद तुम तनवीर को चाहे रकम दो या ना दो हमें कोई सरोकार नहीं। आजाद तो तुम यूँ भी हो। मैं तो बस ये सोच कर बाग-बाग था कि जो घर हमारे लिए सराय बन कर रहा गया था वहाँ फिर से एक 'घर' नजर आने लगा है। मेरा घर... मेरे बेटे का घर... जिस घर की आबोहवा में एक बीवी की चूड़ियों की खनक ना हो, एक माँ के साए का पहरा न हो वो घर भी क्या घर है जीनत...' - कहते हुए आवाज रुँध गई। मैं पलटी -

'शुक्र है अब्बास, तुम औरत की अजमत को पहचानते हो। मैं तुम्हें एक बात बता दूँ... मर्द जायदाद बनाता है। औरत 'घर' बनाती है। एक बार तनवीर का घर बसाया था, उसने उजाड़ डाला। मगर अब ये घर नहीं उजड़ने दूँगी। मैं तैयार हो कर आती हूँ।'

कहती हुई मैं बाहर निकल गई। अब्बास यहाँ-वहाँ फोन लगाने लगा। एक-आद अखबार नवीसों को भी बुला लिया। बैंक में आ कर तनवीर और अब्बास कागजी लिखा -पढ़ी में लग गए। मैं एक तरफ सोफे पर बैठी रही। जहाँ जरूरत पड़ती अब्बास आ कर मुझसे दस्तखत करवा ले जाता। मैं बुर्के की पट्टी के पीछे से दोनों को पढ़ती रही बारी-बारी। तनवीर की जीत भले ही हुई थी मगर चेहरे पे काला रंग सा पुता जा रहा था।

जबकि अहमद अब्बास के चेहरे पे सुनहरी धूप खिलती जा रही थी। चेहरा गैबी-खुशी से दमक रहा था।

दूसरे रोज अखबारवालों को जाने क्या सूझी, कि तनवीर की खूब छीछा-लेदर की और अहमद अब्बास की बल्ले-बल्ले। नोमान पेपर देखते ही मुझसे आ कर लिपट गया। उसकी आँखें नम हो गईं। अभी हम अखबार की सुर्खियों पर निगाहें फेर ही रहे थे कि अब्बास का मोबाइल बज उठा। मैं अब्बास का चेहरा पढ़ने लगी। अब्बास के लहजे, बातें, और चेहरे के उतार-चढ़ाव से साफ जाहिर हो रहा था कि... तनवीर किसी चोटिल साँप की तरह फुँफकार रहा है। उसके चेहरे पर ये मेरा तीसरा थप्पड़ था।

अब्बास ने मुस्कराते हुए मोबाइल मुझे थमा दिया। मैं कुछ देर तक मोबाइल कान से सटा कर उसकी गालियों का मजा लेती रही मगर बर्दाश्त कहाँ, बोली 'ऐ तनवीर तेरे दो करोड़ तेरे मुँह पर दे मारे अब क्यूँ दुम फटकार रहा है...?'

मेरी आवाज सुन कर वह चौंक पड़ा -

'हे... तू... तेरा मुँह कैसे पड़ा मुझसे बोलने का, ...जीनत ...तूने बड़ी रुसवाई कराई है। मैं तुझे कभी माफ नहीं करूँगा... कभी नहीं... उफ... ये जिल्लतें... ये... बेवफाइयाँ...'

मैंने हँसते हुए मोबाइल बंद कर दिया।

—— X ——